भूआकृति विज्ञान की प्रकृति
(Nature of Geomorphology)

सन् 1945 में अमेरिकी अभियन्ता आर० ई० हार्टन द्वारा जलीय उत्पत्ति वाली अपवाह बेसिन की आकारमितिक विशेषताओं के विश्लेषण में मात्रात्मक विधियों के प्रतिपादन के साथ ही भूआकृति विज्ञान में स्थलरूपों तथा उनसे सम्बन्धित प्रक्रमों (processes) के अध्ययन से सम्बन्धित विधितंत्र (methodology) तथा उपागमों (approaches) में भारी परिवर्तन हुए हैं। इस तरह भूआकृति विज्ञान में दो उपागम स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आये हैं—(i) **विकासीय उपागम**, जिसके अन्तर्गत दीर्घ कालिक अवधि के दौरान स्थलरूपों में क्रमिक एवं प्रगामी (progressive) परिवर्तनों की अवधारणा की गयी है तथा (ii) **प्रक्रम-अनुक्रिया उपागम** (process-response approach), जिसके अन्तर्गत स्थलरूपों में समस्थिति एवं स्थिर दशा (steady state) की अवधारणा सम्मिलित की गयी है। वर्तमान समय में इन दोनों उपागमों में समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता है, अर्थात् चक्रीय संकल्पना या दीर्घ कालिक समय मापक एवं विस्तृत क्षेत्रीय वृहद् स्थानिक मापक वाली **वृहद् क्षेत्रीय भूआकारिकी** (mega-geomorphology) तथा अचक्रीय संकल्पना या लघु कालिक एवं स्थानिक मापक वाली **लघु क्षेत्रीय भूआकारिकी** (micro-geomorphology) में एकीकरण करने की आवश्यकता है।

1.1 भूआकृति विज्ञान : परिभाषा

भौतिक भूगोल के प्रमुख चार संघटकों के अध्ययन करने वाले विषय को अलग-अलग विज्ञान (स्थलमण्डल-भूआकृति विज्ञान, सागर तथा महासागर या जलमण्डल-सागर विज्ञान, वायुमण्डल-जलवायु विज्ञान तथा जीवमण्डल-जैव भूगोल) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। भूआकृति विज्ञान एक सजीव तथा व्यापक विषय है जिसके अन्तर्गत स्थलमण्डल के दृश्य भागों का अध्ययन किया जाता है। वास्तव में इस विज्ञान (भूआकृति विज्ञान) के अन्तर्गत स्थलरूपों का ही अध्ययन किया जाता है। इसी आधार पर प्रायः यह कहा जाता है कि—"भूआकृति विज्ञान स्थलरूपों का विज्ञान है"। भूआकृति विज्ञान अर्थात् "ज्योमार्फोलाजी" (geomorphology) का विन्यास ग्रीक भाषा के 'ge' (पृथ्वी-earth), 'marphi' (रूप-form) तथा 'logos' (वर्णन-discourse) शब्दों से हुआ है। यदि शाब्दिक अर्थ पर दृष्टिपात किया जाय तो भूआकृति विज्ञान मात्र स्थलरूपों का ही अध्ययन ठहरता है परन्तु इस विज्ञान को इस संकुचित सीमा से ऊपर उठाना होगा। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि भूआकृति विज्ञान न केवल स्थलरूपों का अध्ययन करता है अपितु भूपटल के विभिन्न रूपों का भी अध्ययन करता है। उपर्युक्त आधार पर भूआकृति विज्ञान की एक परिभाषा प्रस्तुत की जा सकती है—"भूआकृति विज्ञान वह विज्ञान है जो कि स्थलमण्डल के विभिन्न उच्चावच्चों का अध्ययन करता है"—"Geomorphology studies various relief features of lithosphere." इस विज्ञान के अन्तर्गत सामान्य स्थलरूपों जैसे-घाटियाँ, गार्ज, प्रपात, कन्दरायें, बालुका स्तूप, सर्क, रोधिका, पुलिन, क्लिफ आदि के अलावा भूपटल के प्रमुख उच्चावच्चों जैसे-महाद्वीप, महासागर-नितल, पर्वत, पठार, मैदान, झील आदि बड़ी इकाइयों को भी

समाविष्ट किया जाता है। सवाल उठता है, इस विज्ञान के अन्तर्गत अपरदनात्मक एवं निक्षेपात्मक स्थलरूपों के अध्ययन को ही प्राथमिकता क्यों दी जाती है? हल आसान है। स्थलरूपों का निर्माण मानव दृग के सामने होता है। मानव या तो उनका प्रत्यक्ष रूप में अवलोकन कर लेता है या अनुभवों के आधार पर उनका आभास पा लेता है। यही कारण है कि स्थलरूपों का अध्ययन अत्यधिक दिलचस्प होता है। इसके विपरीत महाद्वीप, महासागर नितल, पर्वत, पठार आदि का आविर्भाव, निर्माण, विकास एवं विरूपण मन्द गति से दीर्घकाल में सम्पादित हो पाता है। इन क्रियाओं का प्रत्यक्ष अवलोकन नहीं हो पाता है।

वारसेस्टर महोदय ने भी भूआकृति विज्ञान को स्थलरूपों का ही विज्ञान बताया है परन्तु इस संकुचित परिभाषा से स्वयं असन्तुष्ट होकर इन्होंने इसके क्षेत्र को विस्तृत करना ही श्रेयस्कर समझा है। वारसेस्टर के अनुसार ''भूआकृति विज्ञान पृथ्वी के उच्चावच्चों का व्याख्यात्मक वर्णन है''—"Geomorphology is the interpretative description of the relief features". भूआकृति विज्ञान वह विज्ञान है जो कि भूपटल के विभिन्न रूपों, उनकी उत्पत्ति तथा इतिहास एवं विकास की व्याख्या करता है। इस प्रकार उच्चावच्चों के रूप, उत्पत्ति तथा विकास के इतिहास को समझने के लिए भूपटल की रचना सामग्री (चट्टान) तथा उस पर परिवर्तन लाने वाले आन्तरिक (ज्वालामुखी क्रिया, पटल विरूपणी बल आदि) तथा बाह्य बलों (अपक्षय तथा अपरदन) आदि प्रक्रियाओं का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है।

थार्नबरी के अनुसार ''भूआकृति विज्ञान स्थलरूपों का विज्ञान है परन्तु इसमें अन्त: सागरीय रूपों (submarine forms) को भी सम्मिलित किया जाता है।'' इस तरह भूआकृति विज्ञान स्थलरूपों के अध्ययन से बढ़कर है क्योंकि इसके अन्तर्गत यदि वृहदाकार उच्चावच्चों यथा-महासागर नितल, महाद्वीप, पर्वत आदि का अध्ययन किया जाता है तो लघु आकार वाले स्थलरूपों (अपरदन एवं निक्षेप जनित) का भी अध्ययन किया जाता है। वास्तव में भूआकृति विज्ञान के अन्तर्गत प्रमुख उच्चावच्चों पर निर्मित तथा विकसित स्थलरूपों को ही अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है।

स्ट्रालर महोदय के अनुसार ''भूआकृति विज्ञान सभी प्रकार के स्थलरूपों की उत्पत्ति तथा उनके व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध विकास की व्याख्या करता है तथा यह भौतिक भूगोल का एक प्रमुख अंग है।'' मानव के लिए भूपटल की स्थलाकृतियों तथा स्थलरूपों का सर्वाधिक महत्त्व होता है क्योंकि यातायात के साधन, नगर की स्थिति तथा कृषि भूमि, प्रत्यक्ष रूप से इन स्थलरूपों से प्रभावित होती है।

ईस्टरबुक (1969) के अनुसार 'भूआकृति विज्ञान भूतल की आकृतियों का वैज्ञानिक अध्ययन है जिसके अन्तर्गत स्थलरूपों के उद्भव एवं विकास का तथा उनकी उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रक्रमों की प्रकृति एवं क्रियाविधि का व्याख्यात्मक वर्णन इस आधार पर किया जाता है कि सभी स्थलरूपों को किसी खास भौमिकीय प्रक्रम (geologic process) या कई प्रक्रमों से सम्बन्धित किया जा सकता है तथा इस तरह उत्पन्न स्थलरूपों का समय के साथ क्रमिक विकास होता है'। ए० एल० ब्लूम (1979) के अनुसार भूआकृति विज्ञान स्थलाकृतियों तथा उन्हें परिवर्तित करने वाले प्रक्रमों का क्रमबद्ध वर्णन एवं विश्लेषण करता है।

1.2 विषय-क्षेत्र

भूआकृति विज्ञान के विषय क्षेत्र का संगठन तीन आधारों पर किया जा सकता है—(i) उच्चावच्चों (स्थलरूपों) के आयाम (विस्तार-dimension) एवं मापक, (ii) स्थलरूपों को निर्मित करने वाले भ्वाकृतिक प्रक्रम (geomorphic processes) तथा (iii) भ्वाकृतिक अध्ययन के उपागम।

भूआकृति विज्ञान का अध्ययनक्षेत्र अत्यधिक सुनिश्चित है। पृथ्वी की स्थलीय सतह का उल्लेख ही इसका प्रमुख विषय है, और अधिक स्पष्टता के लिये यह कहा जा सकता है कि भूआकृति विज्ञान के अध्ययन का प्रमुख विषय पृथ्वी के उच्चावच्चों का क्रमबद्ध अध्ययन है। इस विज्ञान के अन्तर्गत विभिन्न उच्चावच्चों की उत्पत्ति, विकास तथा वर्तमान रूप का ब्योरेवार विवरण प्रस्तुत किया जाता है। यद्यपि भूआकृति विज्ञान, भूगोल का एक अभिन्न अंग है तथापि इसका आरम्भ भूगर्भशास्त्र (भौमिकी) (geology) से ही होता है। इसी आधार पर भूआकृति विज्ञान को कभी-कभी भूगर्भशास्त्र का एक अंग माना जाता है। थार्नबरी ने तो यहाँ तक कह डाला है-''भूआकृति विज्ञान मुख्य रूप से भूगर्भशास्त्र है।'' लोबेक महोदय के अनुसार ''भूआकृति विज्ञान या स्थलरूपों के अध्ययन का विज्ञान भूगर्भशास्त्र की एक शाखा है।'' भूआकृति विज्ञान का सम्बन्ध भूगर्भशास्त्र के केवल उस अंश से है जो भूपटल की सतह की संरचना से सम्बन्धित है। भूआकृति विज्ञान तथा संरचनात्मक एवं गत्यात्मक भूगर्भशास्त्र (structural and dynamic geology) में गहरा सम्बन्ध है। चट्टानों की संरचना तथा संगठन के आधार पर स्थलरूपों के निर्माण तथा विकास को समझने में पर्याप्त सुविधा होती है। इस कारण भूगर्भशास्त्र के उस भाग, जिसका सम्बन्ध पृथ्वी की सतह की संरचना से होता है, का अध्ययन वांछनीय ही नहीं आवश्यक सा हो जाता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भूपृष्ठ की रचना सामग्री (चट्टान) का वर्णन भूआकृति विज्ञान में किया जाता है।

स्थलरूपों के स्वभाव को समझने के लिये कभी-कभी सैद्धान्तिक भूगर्भशास्त्र का भी अध्ययन आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए पर्वत निर्माण की क्रिया का पृथ्वी के आन्तरिक भाग से गहरा सम्बन्ध है। इसलिये पृथ्वी की आन्तरिक संरचना को जानना भी अनिवार्य होता है। जब तक भूपटल के प्रमुख

उच्चावच्चों (महाद्वीप, महासागर नितल, पर्वत, पठार आदि) का विधिवत ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता तब तक उन पर निर्मित तथा विकसित होने वाले स्थलरूपों का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से पृथ्वी के प्रमुख उच्चावच्चों के वर्तमान रूप, प्रकार, संरचना तथा उनके निर्माण से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या करना अत्यावश्यक हो जाता है.। भूपटल पर स्थलरूपों का विकास आन्तरिक तथा बाह्य बलों द्वारा होता है। आन्तरिक बलों में पटलविरूपणी बल तथा आकस्मिक बल (ज्वालामुखी क्रिया तथा भूकम्प) महत्त्वपूर्ण होते हैं। यद्यपि इन बलों का सम्बन्ध भौतिक भौमिकी से है तथापि इन बलों के सभी रूपों का उल्लेख भू आकृति विज्ञान में आवश्यक होता है। यद्यपि भू आकृति विज्ञान का प्रमुख विषय इन बलों द्वारा उत्पन्न स्थलरूप ही है तथापि उनकी (स्थलरूप) व्योरेवार व्याख्या के लिए इन बलों के कार्य करने के विभिन्न रूपों का भी उल्लेख इस विज्ञान के अन्तर्गत होना चाहिए। वाह्य बलों में अपक्षय (weathering) तथा अपरदन के विभिन्न साधन (नदी, पवन, हिमानी, सागरीय तरंग आदि) अधिक महत्वपूर्ण हैं। भूपटल पर इन्हीं वाह्य बलों द्वारा ही अधिकांश स्थलरूपों का विन्यास होता है। भू-आकृति विज्ञान के अन्तर्गत अन्त:सागरीय स्थलरूपों (submarine forms) का भी अध्ययन किया जाता है।

भूआकृति विज्ञान के अध्ययन का प्रधान विषय पृथ्वी के विभिन्न उच्चावच्च हैं। स्थलमण्डल की सतह पर उर्ध्वाकार स्थलीय विषमताओं (vertical irregularities) को उच्चावच्च की संज्ञा प्रदान की जाती है। यदि उच्चावच्च विशाल पर्वतों के रूप में ऊँचे हो सकते हैं तो पहाड़ियों या टीलों के रूप में कम ऊँचे और घाटियों के रूप में गहरे हो सकते हैं।

विस्तार एवं आकार की दृष्टि से भूतल के उच्चावच्चों, जो भूआकृति विज्ञान के अध्ययन का केन्द्र स्थल है, को तीन वृहद् श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—

(i) प्रथम श्रेणी के उच्चावच्च (relief features of the first order)—इस वर्ग के अन्तर्गत भूतल के उन उच्चावच्चों को सम्मिलित किया जाता है जो कि प्रमुख हुआ करते हैं। उदाहरण के लिए महाद्वीप तथा महासागर नितल इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। इन दो विशाल स्थलरूपों के वर्तमान रूप तथा वितरण, उत्पत्ति एवं विकास की समुचित व्याख्या वांछित होती है। समस्त ग्लोब के 70.8 प्रतिशत भाग पर जलमण्डल (सागर एवं महासागर) तथा 29.2 प्रतिशत भाग पर स्थलमण्डल का विस्तार है। इन्हें भूतल के प्रारम्भिक उच्चावच्च के नाम से भी अभिहीत किया जाता है। महाद्वीपों तथा सागरों की उत्पत्ति, वर्तमान रूप तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इनकी आलोचनात्मक व्याख्या "महाद्वीपों तथा महासागरों की उत्पत्ति" नामक अध्याय 6 में की गई है। इन दो प्रमुख उच्चावच्चों की उत्पत्ति के पहले पृथ्वी की उत्पत्ति तथा उसके भूगर्भिक इतिहास की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होता है। देखिये लेखक की पुस्तक '**भौतिक भूगोल**' का प्रथम अध्याय।

(ii) द्वितीय श्रेणी के उच्चावच्च (relief features of the second order)—पर्वत, पठार, मैदान तथा झीलों को द्वितीय श्रेणी के उच्चावच्चों के अन्तर्गत रखा जाता है। इनको संरचनात्मक स्थलरूप (structural landforms) भी कहा जाता है। इन उच्चावच्चों का निर्माण मुख्य रूप से पृथ्वी के आन्तरिक बलों द्वारा प्रथम श्रेणी के उच्चावच्चों पर होता है। पटलविरूपणी बल (diastrophic force महादेश जनक तथा पवर्तन बल) इसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। भूतल पर दो तरह के बल कार्य करते हैं—रचनात्मक बल (constructive force) तथा विनाशात्मक बल (destructive force)। चूँकि पर्वत, पठार, मैदान का (केवल द्वितीय वर्ग के स्थलरूप क्योंकि कुछ पर्वतों, पठारों तथा मैदानों का निर्माण अपक्षय तथा अपरदन द्वारा भी होता है) निर्माण पृथ्वी के आन्तरिक बल (रचनात्मक) द्वारा होता है अत: इन्हें रचनात्मक स्थलरूप कहते हैं। इनमें से प्रत्येक प्रकार के उच्चावच्च के सामान्य रूप, उनके निर्माण की प्रक्रिया तथा सम्बन्धित सिद्धान्त एवं विकास का अध्ययन किया जाता है। यद्यपि ज्वालामुखी क्रिया पृथ्वी के आन्तरिक बल के अन्तर्गत आती है परन्तु इसका उल्लेख पहले ही इसलिए कर दिया गया है कि इस क्रिया का पृथ्वी के आन्तरिक भाग से अधिक सम्बन्ध है। ज्वालामुखी क्रिया द्वारा बने स्थलरूप मुख्य रूप से रचनात्मक ही होते हैं परन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए इनकी व्याख्या भी ज्वालामुखी क्रिया की व्याख्या के साथ ही कर दी गई है (अध्याय 11)।

(iii) तृतीय श्रेणी के उच्चावच्च (relief features of the third order)—द्वितीय श्रेणी के उच्चावच्चों पर निर्मित तथा विकसित स्थलरूपों को तृतीय श्रेणी के उच्चावच्चों के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। पर्वत, पठार, मैदान आदि प्रमुख उच्चावच्चों पर पृथ्वी के वाह्य बलों (अपक्षय तथा अपरदन) द्वारा अनेक स्थलरूपों की रचना होती है। चूँकि ये वाह्य बल विनाशकारी होते हैं अत: इनके द्वारा निर्मित स्थलरूपों को 'विनाशात्मक स्थलरूप' (destructional landforms) कहते हैं। इन बलों में बहता हुआ जल (नदी), पवन, हिमानी तथा सागरीय तरंग अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। नदियों द्वारा निर्मित स्थलरूप तीन तरह के होते हैं—अपरदनात्मक स्थलरूप (घाटियाँ, कैनियन, गार्ज, प्रपात, सोपान आदि), अवशिष्ट स्थलरूप—residual landforms (चोटियाँ, मोनाडनाक आदि) तथा निक्षेपात्मक स्थलरूप (जलोढ़ पंख, प्राकृतिक तटबन्ध, बाढ़ का मैदान, डेल्टा आदि)। हिमानी द्वारा निर्मित अपरदनात्मक स्थलरूपों में सर्क, U आकार की घाटी आदि, अवशिष्ट स्थलरूपों में एरेटी, मैटरहार्न, रॉशमुटोने तथा निक्षेपात्मक आकारों में हिमोढ़, एस्कर, ड्रमलिन, केम आदि महत्वपूर्ण होते हैं। इसी तरह पवन तथा सागरीय तरंगें भी अपरदन

तथा निक्षेपण द्वारा विभिन्न प्रकार के स्थलरूपों का निर्माण करती हैं। भूआकृति विज्ञान में तृतीय श्रेणी के इन्हीं स्थलरूपों को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है।